

## समाज पर प्रौद्योगिकी के प्रभाव

(EFFECTS OF TECHNOLOGY ON SOCIETY)

सामाजिक परिवर्तन में प्रौद्योगिक कारकों की भूमिका को सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों पर इनके व्यापक प्रभाव को देखकर भी ज्ञात किया जा सकता है। सामाजिक जीवन पर प्रौद्योगिक कारकों के कुछ प्रभाव प्रत्यक्ष होते हैं तो कुछ अप्रत्यक्ष। इनमें से कुछ प्रमुख प्रभावों को निम्नांकित रूप से समझा जा सकता है :

(1) **औद्योगीकरण का विकास (Rise of Industrialization)**—प्रौद्योगिक विकास का सबसे प्रमुख और प्रत्यक्ष प्रभाव औद्योगीकरण के विकास के रूप में देखा जा सकता है। **औद्योगीकरण** वह प्रक्रिया है जिसमें बड़ी-बड़ी मशीनों द्वारा उत्पादन-कार्य किया जाता है। प्रौद्योगिक ज्ञान वह साधन है जो औद्योगीकरण की प्रक्रिया को प्रोत्साहन देती है। श्रम-विभाजन, विशेषीकरण, बड़ी मात्रा में उत्पादन तथा लाभ की प्रवृत्ति औद्योगीकरण की प्रमुख विशेषताएँ हैं। सच तो यह है कि हमारे सामाजिक, पारिवारिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक व्यवहारों को प्रभावित करने में औद्योगीकरण की भूमिका सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। नयी प्रौद्योगिकी के फलस्वरूप हमारे देश में भी विभिन्न उद्योगों का तेजी से विकास और विस्तार हुआ। विभिन्न उद्योगों में विभिन्न धर्मों, जातियों और संस्कृतियों के हजारों श्रमिकों ने साथ-साथ रहकर कार्य करना आरम्भ किया। इसके फलस्वरूप जाति-संरचना का परम्परागत ढाँचा टूटने लगा। प्राथमिक सम्बन्धों की जगह द्वितीयक अथवा हित-प्रधान सम्बन्ध विकसित होने लगे। व्यवहार के ढंगों में परिवर्तन होने से सामाजिक संस्थाओं ने नया रूप लेना आरम्भ कर दिया। औद्योगीकरण से ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी की समस्या उत्पन्न हो गयी। कुटीर उद्योगों का हास होने से हस्त-शिल्प में लगे लाखों कारीगरों को कारखानों में काम करने के लिए बाध्य होना पड़ा। औद्योगिक विवादों ने वर्ग-संघर्ष की प्रक्रिया को जन्म दिया। सच तो यह है कि वर्तमान युग में विभिन्न वर्गों के बीच पैदा होने वाली आर्थिक असमानताएँ मूल रूप से औद्योगीकरण का ही परिणाम हैं।

(2) **नगरीकरण में वृद्धि (Increasing Urbanization)**—प्रौद्योगिकी का एक प्रमुख प्रभाव नगरीकरण की प्रक्रिया में वृद्धि होना है। नगरीकरण का सम्बन्ध मुख रूप से दो विशेषताओं से है—

(1) **ग्रामीण क्षेत्रों का नगरीय क्षेत्रों में बदलना** तथा (2) **नगरीय विशेषताओं का ग्रामीण जीवन में प्रसार होना**। प्रौद्योगिकी के विकास से जब औद्योगीकरण में वृद्धि हुई तो एक बड़ी ग्रामीण जनसंख्या आजीविका की खोज में नगरों में आकर बसने लगी। इससे छोटे-छोटे नगर बड़े नगरों के रूप में परिवर्तित होने लगे। नगर के आस-पास के ग्रामीण क्षेत्र नगरों से सम्बन्धित हो गये। इसके फलस्वरूप इन समीपवर्ती ग्रामीण क्षेत्रों में व्यक्तियों के व्यवहारों, मनोवृत्तियों, विश्वासों और रहन-सहन में नगर की विशेषताएँ स्पष्ट होने लगीं। समीपवर्ती गाँवों से जब बहुत-से ग्रामीण नगरों में काम करने के लिए आते हैं तो जल्दी ही उनकी जीवन-विधि में परिवर्तन होने लगता है। यही व्यक्ति जब पुनः गाँव में लौटते हैं तो दूसरे ग्रामीण भी उनके व्यवहारों और जीवन-शैली को अपनाने लगते हैं। यह सच है कि नगरीकरण में होने वाली वृद्धि ने नगरीय और ग्रामीण समुदायों के अन्तर को कम किया है लेकिन इस प्रक्रिया से उन समस्याओं को भी प्रोत्साहन मिला जो औद्योगीकरण की देन हैं।

(3) गतिशीलता वृद्धि (Increasing Mobility)—सॉरोकिन ने यह सष्टि किया है कि गतिशीलता को प्रकार की होती है—स्थानीय गतिशीलता तथा सामाजिक गतिशीलता। स्थानीय गतिशीलता का तात्पर्य व्यक्ति द्वारा एक स्थान को छोड़कर दूसरे स्थान पर जाकर रहने की प्रवृत्ति का बढ़ना है। दूसरी ओर, सामाजिक गतिशीलता वह दशा है जिसमें व्यक्ति की आर्थिक अथवा व्यावसायिक स्थिति में परिवर्तन हो जाने से उसकी सामाजिक प्रस्थिति भी बदल जाती है। आज से कुछ समय पहले तक परिवहन परिवर्तन होने से उसकी सामाजिक प्रस्थिति भी बहुत कमी थी। व्यक्ति की सामाजिक स्थिति का निर्धारण भी समाज के परम्परागत नियमों अथवा जाति व्यवस्था के द्वारा होता था। प्रौद्योगिक स्थिति का निर्धारण भी समाज के परम्परागत नियमों अथवा जाति व्यवस्था के द्वारा होता था। प्रौद्योगिक विकास से जब परिवहन की सुविधाओं का विस्तार हुआ तो लोगों ने तेजी से स्थान-परिवर्तन करना आरम्भ कर दिया। नये-नये व्यवसायों की सुविधा मिलने से जब लोगों की आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ तो उनकी परम्परागत सामाजिक प्रस्थिति भी बदलने लगी। जब कभी समाज में स्थानीय और सामाजिक गतिशीलता बढ़ती है तो सामाजिक संरचना में भी परिवर्तन होने लगते हैं।

(4) सामाजिक जीवन में परिवर्तन (Changes in Social Life)—प्रौद्योगिक कारकों ने हमारे सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों को सबसे अधिक प्रभावित किया है। कुछ समय पहले तक लगभग सभी समुदायों का जीवन आत्मनिर्भर था तथा उनके सामाजिक सम्बन्ध बहुत सरल तथा अनौपचारिक प्रकृति के थे। प्रौद्योगिक विकास के फलस्वरूप धीरे-धीरे यह सम्बन्ध जटिल और हित-प्रधान बनने लगे। प्रौद्योगिक विकास से ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हुईं जिनमें जाति-प्रथा के नियमों का बने रहना सम्भव नहीं रह गया। नयी प्रौद्योगिकी शिक्षा, तर्क और विवेक पर आधारित है। इसके फलस्वरूप लोगों की मनोवृत्तियों और सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन होने लगा। आज अधिकांश व्यक्ति व्यवहार के परम्परागत ढंगों को उपयोगी नहीं मानते। प्रौद्योगिक विकास के फलस्वरूप उन व्यक्तियों को भी अपनी स्थिति में सुधार करने का अवसर मिला जिन्हें एक लम्बे समय से जाति व्यवस्था के नियमों द्वारा सभी तरह के सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक अधिकारों से वंचित कर दिया गया था। एक बड़ी संख्या में लोगों की प्रस्थिति और भूमिका में परिवर्तन होने से सामाजिक संरचना में भी परिवर्तन होने लगे। कुछ समय पहले तक सामूहिकता हमारे सामाजिक जीवन की एक प्रमुख विशेषता थी। प्रौद्योगिकी से उत्पन्न नयी दशाओं ने व्यक्तिवादिता में वृद्धि करके सामूहिक जीवन को दुर्बल बना दिया। इसी का परिणाम है कि आज सामाजिक नियन्त्रण की व्यवस्था भी एक ऐसा रूप ग्रहण कर रही है जिसमें कानूनों का स्थान प्रथाओं और परम्पराओं की जगह कहीं अधिक महत्वपूर्ण है।

(5) पारिवारिक जीवन में परिवर्तन (Changes in Family Life)—परिवार सामाजिक व्यवस्था का केन्द्र होता है तथा पारिवारिक जीवन में होने वाले सभी परिवर्तन सामाजिक संरचना को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं। नयी प्रौद्योगिकी के फलस्वरूप संयुक्त परिवारों की जगह केन्द्रक अथवा एकाकी परिवारों की संख्या तेजी से बढ़ने लगी। गाँवों से आकर नगर में रहने वाले श्रमिकों के पास आवास की गम्भीर समस्या ने उन्हें नगर में अकेले ही रहने के लिए बाध्य किया। इससे गाँव के लाखों परिवारों में विघटन के तत्व पैदा होने लगे। नगर की गन्दी बस्तियों का दोषपूर्ण पर्यावरण पारिवारिक तनावों का प्रमुख कारण बन गया। नगरीय संस्कृति ने केवल विलम्ब विवाह और अन्तर्जातीय विवाहों में ही वृद्धि नहीं की बल्कि धीरे-धीरे विवाह-विच्छेद की संख्या में भी वृद्धि होने लगी। प्रौद्योगिक विकास के फलस्वरूप परिवार के अनेक कार्य शिक्षा संस्थाओं और मनोरंजन केन्द्रों ने ले लिये। इसके फलस्वरूप व्यक्ति के जीवन पर परिवार का नियन्त्रण भी कम हो गया। इसके बाद भी खियों तथा युवा वर्ग की प्रस्थिति को सुधारने में नयी प्रौद्योगिकी ने उपयोगी योगदान किया। आज खियों में समानता, स्वतंत्रता और अपने अधिकारों के प्रति जो जागरूकता बढ़ी है, वह प्रौद्योगिक विकास का ही परिणाम है।

(6) धार्मिक जीवन में परिवर्तन (Changes in Religious Life)—परम्परागत समाजों में व्यक्तियों के व्यवहारों को प्रभावित करने में धार्मिक मूल्यों और विश्वासों का विशेष महत्व होता है। प्रौद्योगिक विकास ने धार्मिक मान्यताओं को बदलकर हमारे समाज को व्यापक रूप से प्रभावित किया। आज व्यक्ति का दृष्टिकोण अधिक वैज्ञानिक हो जाने से धार्मिक विश्वासों का प्रभाव बहुत कम हो गया है। वैज्ञानिक आविष्कारों और तार्किक ज्ञान के कारण व्यक्ति अब उन्हीं व्यवहारों को अधिक उपयोगी समझते हैं जिन्हें तर्क और विवेक के आधार पर समझा जा सकता हो। एक ही स्थान पर विभिन्न धर्मों और सम्प्रदायों के व्यक्ति जब साथ-साथ रहने लगे तो धार्मिक विभेदों को प्रोत्साहन देने वाले व्यवहार

का प्रभाव होने लगा। वर्तमान जीवन में धर्म का सम्बन्ध कुछ कर्मकाण्डों, संस्कारों अथवा रूढ़ियों के पालन से नहीं समझा जाता बल्कि धर्म मानवतावादी और नैतिक विचारों से सम्बन्धित होता जा रहा है। धार्मिक सहनशीलता बढ़ने से धर्म-निरपेक्षता के प्रभाव में भी वृद्धि हुई है।

(7) **आर्थिक व्यवस्था में परिवर्तन** (Changes in Economic System)—हमारे सभी आर्थिक व्यवहार सामाजिक सम्बन्धों को प्रभावित करके समाज में परिवर्तन लाते हैं। नयी प्रौद्योगिकी के फलस्वरूप श्रम-विभाजन और विशेषीकरण को प्रोत्साहन मिलने से व्यक्ति की जाति अथवा पारिवारिक पृष्ठभूमि का उतना महत्व नहीं रह गया जितना कि व्यक्तिगत कार्यकुशलता का। प्रौद्योगिकी ने श्रमिकों को संगठित होकर अपने अधिकारों की माँग करने का प्रोत्साहन दिया। आज बड़े-बड़े श्रमिक संघों का विकास इसी दशा का परिणाम है। श्रमिक संघों के प्रयत्नों से ही सरकार के द्वारा श्रमिकों को सुरक्षा देने के लिए नये औद्योगिक कानून बनाये गये। इसके बाद भी नयी प्रौद्योगिकी ने एक ऐसी आर्थिक व्यवस्था को विकसित किया जो प्रतिस्पर्द्धा के सम्बन्धों पर आधारित है। इस व्यवस्था में आर्थिक वर्गों का निर्माण एक आवश्यक घटना है।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों को प्रभावित करने में किसी भी दूसरे कारक की तुलना में प्रौद्योगिक विकास कहीं अधिक निर्णायक सिद्ध होता है।

### सामाजिक परिवर्तन के आर्थिक कारक (ECONOMIC FACTORS OF SOCIAL CHANGE)

सामाजिक परिवर्तन के आर्थिक कारकों को समझने से पहले यह जानना आवश्यक है कि आर्थिक कारकों का अभिप्राय किन दशाओं अथवा विशेषताओं से है ? साधारणतया यह समझा जाता है कि प्रति व्यक्ति आय, लोगों का जीवन स्तर, आर्थिक समस्याएँ, आर्थिक आवश्यकताएँ तथा सम्पत्ति का संचय आदि वे दशाएँ हैं जिन्हें आर्थिक कारक कहा जा सकता है। वास्तव में यह दशाएँ स्वयं आर्थिक कारक न होकर आर्थिक कारकों के प्रभाव से उत्पन्न होने वाली कुछ प्रमुख दशाएँ हैं। **आर्थिक कारकों का तात्पर्य उन आर्थिक संस्थाओं तथा शक्तियों से होता है जो किसी समाज की आर्थिक संरचना का निर्माण करती हैं।** इस दृष्टिकोण से उपभोग की प्रकृति, उत्पादन का स्वरूप, वितरण की व्यवस्था, आर्थिक नीतियाँ, श्रम-विभाजन की प्रकृति तथा आर्थिक प्रतिस्पर्द्धा वे प्रमुख आर्थिक कारक हैं जो व्यक्तियों के पारस्परिक सम्बन्धों को एक विशेष ढंग से प्रभावित करते हैं। मार्क्स के अनुसार केवल उत्पादन का स्वरूप अथवा उत्पादन का ढंग अकेले इतना महत्वपूर्ण आर्थिक कारक है जिसमें होने वाला कोई भी परिवर्तन सम्पूर्ण सामाजिक संरचना को बदल देता है। सामाजिक परिवर्तन से सम्बन्धित विभिन्न आर्थिक कारकों की प्रकृति को निम्नांकित रूप से समझा जा सकता है :

(1) **उपभोग की प्रकृति** (Nature of Consumption)—किसी समाज में व्यक्ति किन वस्तुओं का उपभोग करते हैं तथा उपभोग का स्तर क्या है, यह तथ्य एक बड़ी सीमा तक सामाजिक जीवन को प्रभावित करता है। किसी समाज में जब अधिकांश व्यक्तियों को एक न्यूनतम जीवन स्तर बनाये रखने के लिए उपभोग की केवल सामान्य सुविधाएँ ही प्राप्त होती हैं तो वहाँ परिवर्तन की गति बहुत सामान्य होती है। इसके विपरीत, यदि अधिकांश व्यक्ति उपभोग की सामान्य सुविधाएँ पाने से भी वंचित रहते हैं तो धीरे-धीरे जनसामान्य का असन्तोष इतना बढ़ जाता है कि वे सम्पूर्ण सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था में परिवर्तन लाने का प्रयत्न करने लगते हैं। व्यक्तियों का जीवन-स्तर यदि सामान्य से अधिक ऊँचा होता है तो अधिकांश व्यक्ति परम्परागत व्यवहार प्रतिमानों, प्रथाओं और धार्मिक नियमों को अपने लिये आवश्यक नहीं समझते। इसके फलस्वरूप वहाँ परिवर्तन की प्रक्रिया बहुत तेज हो जाती है। मार्क्स का विचार है कि जिन समाजों में व्यक्तियों को उपभोग की आवश्यक सुविधाएँ नहीं मिल पातीं, वहाँ सम्पन्न समाजों की तुलना में सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया कहीं अधिक तेज होती है। वास्तविकता यह है कि उपभोग की प्रकृति में होने वाला कोई भी परिवर्तन सामाजिक सम्बन्धों और स्तरीकरण की व्यवस्था में परिवर्तन उत्पन्न करके सामाजिक जीवन में व्यापक परिवर्तन उत्पन्न कर देता है।

(2) **उत्पादन की प्रणालियाँ** (Modes of Production)—उत्पादन की प्रणाली का तात्पर्य मुख्य रूप से उत्पादन के साधनों, उत्पादन की मात्रा तथा उत्पादन के उद्देश्य से है। मार्क्स के अनुसार उत्पादन की प्रणाली सामाजिक परिवर्तन का सबसे प्रमुख कारण है। उत्पादन के साधन अथवा उपकरण जब बहुत सरल और परम्परागत प्रकृति के थे, तब समाजों की प्रकृति भी सरल थी। अनेक प्रकार के शोषण और

42  
आर्थिक कठिनाइयों के बाद भी व्यक्ति अपनी दशाओं से सन्तुष्ट रहते थे। जैसे-जैसे परम्परागत प्रविधियों की जगह उन्नत ढंग की मशीनों के द्वारा उत्पादन किया जाने लगा, समाज के उच्च और निम्न वर्ग की आर्थिक असमानताएँ बढ़ने लगीं। यह आर्थिक असमानताएँ वर्ग-संघर्ष को जन्म देकर सामाजिक परिवर्तन का ही नहीं बल्कि क्रान्ति तक का कारण बन जाती हैं। इसी तरह भूमि पर किया जाने वाला कृषि उत्पादन जब उपभोग के लिए किया जाता है तो सामाजिक परिवर्तन बहुत कम होता है लेकिन जब कारखानों में बड़ी मात्रा में उत्पादन होने लगता है तो सामाजिक विषमताएँ बढ़ने से परिवर्तन में तीव्रता आ जाती है। जब कभी भी उत्पादन की प्रणालियाँ बदलती हैं (जैसे—हथकरघों की जगह मशीनों से कपड़े का उत्पादन होने लगे अथवा हल और फावड़े के स्थान पर ट्रैक्टर से खेतों की जुताई होने लगे) तो उत्पादन से सम्बन्धित विभिन्न व्यक्तियों के आर्थिक सम्बन्ध भी बदलने लगते हैं। इससे सामाजिक सम्बन्धों और सामाजिक संरचना में परिवर्तन होने लगता है।

(3) वितरण की व्यवस्था (System of Distribution)—प्रत्येक समाज में वितरण की एक ऐसी व्यवस्था अवश्य पायी जाती है जिसके द्वारा राज्य अथवा समूह अपने साधन विभिन्न व्यक्तियों के उपलब्ध करा सकें। वितरण की यह व्यवस्था या तो राज्य के नियन्त्रण में होती है अथवा व्यक्तियों को इस बात की स्वतंत्रता होती है कि वे प्रतियोगिता के द्वारा अपनी कुशलता के अनुसार स्वयं ही विभिन्न साधन प्राप्त कर लें। वितरण की इन दोनों में से किसी भी एक व्यवस्था के रूप में होने वाला परिवर्तन सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया पैदा करता है। राबर्ट बीरस्टीड का विचार है कि यदि हवा और पानी की तरह सभी व्यक्तियों को भोजन और वस्त्र भी बिना किसी बाधा के मिल जाएँ तो समाज में कोई समस्या न रहने के कारण सामाजिक परिवर्तन की दशा भी उत्पन्न नहीं होती। इसके विपरीत, व्यवहार में प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन में अनेक आर्थिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है जिसके फलस्वरूप सामाजिक परिवर्तन उत्पन्न हो जाना भी बहुत स्वाभाविक है। उदाहरण के लिए, प्राचीन समय में वस्तु-विनिमय का प्रचलन था जिसके फलस्वरूप व्यक्तियों के बीच प्राथमिक सम्बन्ध थे तथा लोगों की आवश्यकताएँ बहुत कम थीं। वस्तु-विनिमय की जगह जब मुद्रा के द्वारा वस्तुओं को खरीदा और बेचा जाने लगा तो इससे सम्पत्ति के संचय को प्रोत्साहन मिला, व्यक्तिवादिता में वृद्धि हुई तथा प्रत्येक व्यक्ति विशेषीकरण के द्वारा अधिक-से-अधिक लाभ प्राप्त करने का प्रयत्न करने लगा। व्यक्तियों के इन जटिल व्यवहारों पर नियन्त्रण लगाने के लिए राज्य के कानूनों का प्रभाव बढ़ने लगा। पूँजी और आर्थिक साधनों का असमान वितरण होने से विभिन्न आर्थिक वर्गों के बीच संघर्ष बढ़ते हैं। यह दशा भी सामाजिक परिवर्तन को प्रोत्साहन देती है।

(4) आर्थिक नीतियाँ (Economic Policies)—प्रत्येक राज्य कुछ ऐसी आर्थिक नीतियाँ बनाता है जिनके द्वारा उपभोग, उत्पादन तथा वितरण की व्यवस्था को सन्तुलित बनाया जा सके। आर्थिक नीतियाँ केवल आर्थिक सम्बन्धों को ही व्यवस्थित नहीं बनातीं बल्कि सामाजिक परिवर्तन को रोकने अथवा उसमें वृद्धि करने में भी इनका महत्वपूर्ण योगदान होता है। उदाहरण के लिए, यदि राज्य स्वतन्त्र अर्थ-व्यवस्था पर नियन्त्रण लगाकर श्रमिकों की मजदूरी, कार्य की दशाओं तथा कल्याण सुविधाओं के बारे में कानून बनाकर श्रमिकों को संरक्षण प्रदान करता है तो समाज में स्तरीकरण की व्यवस्था बदलने लगती है। पूँजीवाद अर्थ-व्यवस्था की जगह राज्य द्वारा यदि सार्वजनिक उद्योगों की स्थापना की जाने लगती है तो इससे भी आर्थिक संरचना में और फिर सामाजिक संरचना में परिवर्तन होने लगते हैं। भारत में पंचवर्षीय योजनाओं के द्वारा जब आर्थिक और सामाजिक विकास के नये कार्यक्रम लागू किये गये तो हमारे समाज की सामाजिक संरचना तथा व्यक्तियों के विचारों और प्राचेन्टियों में —

(5) श्रम-विभाजन (Division of Labour)—श्रम-विभाजन एक विशेष आर्थिक कारक है जिसका सामाजिक परिवर्तन से प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। समाज में जब किसी तरह का श्रम-विभाजन नहीं होता तो प्रत्येक व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं को स्वयं पूरा करता है। इसके फलस्वरूप लोगों का जीवन आत्मनिर्भर अवश्य बनता है लेकिन लोग अपने धर्म, जाति और समुदाय के बन्धनों से बाहर नहीं निकल पाते। श्रम-विभाजन एक ऐसी दशा है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति से एक विशेष कार्य के ज्ञान द्वारा आजीविका उपार्जित करने की आशा की जाती है। इसका तात्पर्य है कि श्रम-विभाजन में सभी व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए एक-दूसरे पर निर्भर हो जाते हैं। दुर्खाम ने इस दशा को 'सावधवी एकता' कहा है। इसका अर्थ है कि जिस तरह हमारी जीव रचना के विभिन्न अंग एक-दूसरे से अलग

कार्य करने के बाद भी अपने अस्तित्व के लिए एक-दूसरे पर निर्भर रहते हैं, उसी तरह श्रम-विभाजन के द्वारा सभी व्यक्ति एक विशेष वस्तु के निर्माण में एक-दूसरे को सहयोग देने के कारण परस्पर निर्भर बने रहते हैं। इसके बाद भी श्रम-विभाजन की दशा व्यक्तिवादिता अथवा वैयक्तिक स्वार्थों में वृद्धि करके सामाजिक जीवन को जटिल बनाने लगती है। राज्य के लिए भी यह आवश्यक हो जाता है कि योजनाबद्ध रूप से व्यक्तियों के व्यवहारों पर नियन्त्रण लगाया जाये। सामाजिक नियन्त्रण में परिवर्तन होने से जब सामाजिक संस्थाओं का रूप बदलने लगता है तो सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया भी तेज हो जाती है।

(6) **आर्थिक प्रतिस्पर्द्धा** (Economic Competition)—प्रतिस्पर्द्धा यद्यपि एक सामाजिक प्रक्रिया है लेकिन जब यह प्रक्रिया आर्थिक क्रियाओं से सम्बन्धित हो जाती है, तब इसी को हम आर्थिक प्रतिस्पर्द्धा कहते हैं। जॉन्सन का कथन है कि आर्थिक प्रतिस्पर्द्धा व्यक्तियों में तनाव और संघर्ष की दशा उत्पन्न करके सामाजिक परिवर्तन को प्रोत्साहन देती है। आर्थिक प्रतिस्पर्द्धा के फलस्वरूप प्रत्येक व्यक्ति दूसरे की तुलना में अधिक-से-अधिक लाभ प्राप्त करने का प्रयत्न करने लगता है। इसके फलस्वरूप व्यक्तियों की कार्यकुशलता अवश्य बढ़ती है लेकिन पारस्परिक द्वेष और विरोध में भी बहुत वृद्धि हो जाती है। प्रतिस्पर्द्धा की दशा में विभिन्न व्यक्ति अथवा समूह समाज विरोधी व्यवहारों के द्वारा भी अपने उद्देश्यों को पूरा करने का प्रयत्न करने लगते हैं। समाज में आर्थिक प्रतिस्पर्द्धा जितनी अधिक बढ़ती है, राज्य के लिए भी यह आवश्यक हो जाता है कि लोगों के व्यवहारों पर नियन्त्रण लगाने के लिए सामाजिक संस्थाओं और कानूनों में उपयोगी परिवर्तन किये जायें। इस प्रकार आर्थिक प्रतिस्पर्द्धा सामाजिक परिवर्तन को प्रोत्साहन देने वाला एक प्रमुख आर्थिक कारक है।

(7) **औद्योगीकरण** (Industrialization)—अनेक विद्वान् औद्योगीकरण को सामाजिक परिवर्तन का सबसे महत्वपूर्ण आर्थिक कारक मानते हैं। औद्योगीकरण का तात्पर्य बड़े-बड़े उद्योगों की स्थापना के द्वारा मशीनों की सहायता से बड़ी मात्रा में उत्पादन करना है। औद्योगीकरण से छोटे-छोटे कस्बे बड़े औद्योगिक नगरों में परिवर्तित होने लगते हैं। उद्योगों में काम करने वाले लाखों श्रमिकों की मनोवृत्तियों, व्यवहारों और रहन-सहन के तरीकों में परिवर्तन होने लगता है। नये व्यवसायों में वृद्धि होने से सभी धर्मों, जातियों और वर्गों के लोगों द्वारा किये जाने वाले कार्य की प्रकृति में परिवर्तन होने लगता है। इसके बाद भी व्यक्तियों के सम्बन्ध इतने औपचारिक बन जाते हैं कि वे अपने लाभ को ही सर्वोपरि मानने लगते हैं। उद्योगों में बड़े-बड़े श्रमिक संघों की स्थापना होती है। कुटीर और लघु उद्योगों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने से औद्योगीकरण लाखों लोगों के सामने बेरोजगारी की जटिल समस्या उत्पन्न कर देता है। मशीनों से कार्य करने से उत्पन्न होने वाली असुरक्षा, मानसिक तनाव तथा आर्थिक कठिनाइयाँ परिवारिक समस्याएँ भी उत्पन्न करती हैं। इस तरह सामाजिक परिवर्तन में औद्योगीकरण को एक प्रमुख आर्थिक कारक के रूप में टेका जाता है।